भेड़ियों, दरिंदों को ही कोसना पर्याप्त नहीं

- विकास नारायण राय

लैंगिक असमानता के जंगल में भेड़ियों/दरिंदों का यौनिक हिंसा का खेल थमना नहीं जानता। तो भी एक अभिभावक की हैसियत से कोई नहीं चाहेगा कि उसकी बेटी का आसारामों या मुंबई गैंगरेप दरिंदों से वास्ता पड़े। स्त्री विरुद्ध होने वाली घृणित यौनिक हिंसा की ये पराकाष्ठाएँ किसी भी अभिभावक को वितृष्णा एवं असहायता से भर देंगी। पर ये घटनाक्रम केवल कमजोर कानून-व्यवस्था एवं पाखंड़ी धार्मिकता के संदर्भों में ही नहीं देखे जाने चाहिए। दरअसल अभिभावकों की अपनी दोषपूर्ण भूमिका भी इनके लिए कम जिम्मेदार नहीं है। स्त्री सुरक्षा के संदर्भ में सबसे पहले तो हमें यह समझना चाहिए कि पुरुषत्ववादी कानून व्यवस्था को राखी बांधते रहने से लड़कियाँ सुरक्षित नहीं हो जाती हैं। कठोरतम कानून, बढ़ती पुलिस, कड़े से कड़ा दंड, जूडो-कराटे, महिला आयोग, उन्हें हिंसा से नहीं बचा सकते। यदि सही मायने में लड़कियों को सुरक्षित करना है तो उन्हें 'जबान' और 'विवेक' देना होगा। इन पर परिवारों में अभिभावकों द्वारा ही, लैंगिक स्वाधीनता को कुचलकर, सबसे प्रभावी रूप से लगाम कसी जाती है।

अपने 35 वर्ष के पुलिस जीवन में मुझे सैकड़ों अभिभावक अपनी बेटियों के घर से बिना उन्हें ख़बर किए किसी युवक के साथ जाने की शिकायत के साथ मिले होंगे। उनके नजरिए से उनकी बेटियों को धोखे से अगवा कर लिया गया था। पर वे यह समझने/समझाने में असमर्थ होते थे कि जीवन के इतने बड़े निर्णय में उनकी बेटियों ने उन्हें शरीक क्यों नहीं किया। बेटियों को 'चुप' रहना सिखाकर वे उनसे इतने अलग-थलग पड़ चुके थे! ये वही बेटियाँ हैं जो बचपन में पैर में काँटा चुभ जाय तो माँ-बाप से सारा दिन उसका बयान करने से नहीं थकती थीं। ऐसा क्यों होता है कि स्कूल में अध्यापक लड़की का महीनों यौन-शोषण करता है और घरवालों को तभी पता चलता है जब वह गर्भवती हो जाय। क्या इस घातक संवादहीनता के लिए अभिभावक दोषी नहीं? घर का लैंगिक वातावरण जो लड़की को 'चुप' रहना सिखाता है, दोषी नहीं?

पहली गलत नज़र, पहला गलत शब्द, पहली गलत हरकत, और क्या लड़की को गुस्से और विरोध से फट नहीं पड़ना चाहिए? कहीं भी, कभी भी, किसी भी संदर्भ में, किसी के भी संसर्ग में, कितने अभिभावक यह सिखाते हैं। बोल कर बदमाशियों को तुरन्त नंगा किया जा सकता है। आज की सामाजिक चेतना की बनावट भी ऐसी है कि यदि बदमाशी सार्वजनिक हो जाए तो पीड़ित के पक्ष में तमाम तबके एवं राज्य भी खड़े होते हैं। लड़की का 'बोलना' ही आज की परिस्थिति में उसका सबसे कारगर हथियार है। लेकिन परिवारों में लड़की को 'चुप' रहना ही सिखाया जाता है। उसे तमाम महत्त्वपूर्ण विषयों पर बातचीत में शामिल नहीं किया जाता और विशेषकर यौनिक विषयों पर तो बिल्कुल भी नहीं। लिहाज़ा यौनिक दुराचार के चक्रव्यूह में फंसने पर अभिमन्यु की तरह परास्त होना ही उसकी नियति हो जाती है। आसाराम प्रसंग की पीड़ित लड़की इसी प्रक्रिया का शब्दशः उदाहरण है।

हर 'बड़ा' आदर के योग्य नहीं होता। हर दुःसाहस प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। यहाँ विवेक की भूमिका आती है। विवेक भी बातचीत एवं विमर्श से ही आता है। हर वह परिस्थिति, हर वह आयाम, हर वह खतरा, हर वह उपाय, जो घरेलू एवं बाहरी दुनिया में लड़की की सुरक्षा से संबंध रखता है, पूरी तरह उसकी सुरक्षा प्रोफाइल का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

सामाजिक वास्तविकताएँ, उनके प्रति हमारे उदासीन रहने से बदलने नहीं जा रहीं। यौनिक हिंसा का शैतान जब स्त्री के सामने खड़ा हो जाता है तो उस पल न कानून-व्यवस्था और न राखी-व्यवस्था लड़की के किसी काम की रह जाती हैं। इस शैतान से सामना ही न हो, इससे उसे उसका विवेक ही बचा सकता है। मुम्बई प्रकरण का यह एक महत्वपूर्ण सबक है। परिवार के अलावा सामुदायिक पहल, कार्यस्थल और मीडिया इस 'विवेक' को मजबूत करने के अनिवार्य प्लैटफार्म बनने चाहिये। यह अवसर राज्य, नागरिक समाज, मीडिया के लिए इन जैसे प्रकरणों में निहित चुनौतियों का उत्तर देने का भी होना चाहिये। यौनिक ही नहीं, लैंगिक चुनौतियों का भी। जाहिर है कि महज पुरुषत्ववादी या सजावटी उपायों से स्त्रियां सुरक्षित होने नहीं जा रहीं। जस्टिस वर्मा कमेटी एवं तद्जनित विधायी प्रावधानों ने यौनिक हिंसा के सारे मसले को केवल कानून-व्यवस्था के 'मर्दाने' चश्मे से देखकर, कड़े कानून और कठोर दंड जैसे उपायों से नियन्त्रित करने का प्रयास किया। पर इन उपायों से स्त्रियों में सुरक्षा की भावना पनप नहीं सकी। दरअसल इन कदमों से सम्बन्धित सरकारी-गैरसरकारी क्षेत्रों में भी समस्या के निराकरण को लेकर शायद ही विश्वास बना हो।

स्त्री सुरक्षा के सजावटी उपायों की तो जमकर छीछालेदर की ही जानी चाहिये। वे स्त्री सुरक्षा का एक भ्रमजाल भर बुनते हैं। महिला आयोगों, महिला पुलिस थानों, महिला बसों/ट्रेनों, महिला बैंकों/डाकघरों, महिला शिक्षण संस्थानों, इत्यादि का महिला सुरक्षा के संदर्भ में उतना ही योगदान हो सकता है जितना भैयादूज, राखी, करवा चौथ, जैसे त्यौहारों का बच गया है। इनकी उपयोगिता मात्र भावनात्मक रस्म-अदायगी की ही रह गयी है। क्या हमें सजावटी उपायों का महिमा-मंडन बंद नहीं करना चाहिये?

यौन हिंसा के उपरोक्त प्रकरणों से दो जीवन्त सवाल निकलकर सामने आते हैं। आसारामों को उनके कुकृत्यों के उजागर होने के बावजूद सामाजिक वैधानिकता क्यों मिलती रहती है?

कौन से लोग और प्रवृत्तियां हैं जो बेशर्मी से बेपरदा हो चुके भेड़ियों को भी संदेह का लाभ या सम्मान का लबादा देने में जुटे रहते हैं? मुम्बई प्रकरण (इससे पहले दिसम्बर 2012 का दिल्ली प्रकरण भी) में शामिल गुनहगारों की पाशविकता की जड़ें कहां हैं? उनके लिये एक अनजान और असुरक्षित लड़की पर हैवानियत का प्रहार करना इतना सहज क्यों रहा? गांवों-कस्बों से औचक काम-धन्धों पर आने वालों के लिए मुम्बई-दिल्ली जैसे महानगरों के सांस्कृतिक परिवेश से परिचय के क्या आयाम होने चाहिए?

पहली नजर में दोनों प्रश्न असम्बद्ध नज़र आ सकते हैं। पर दोनों के पीछे एक ही लैंगिक मनोवृत्ति की भूमिका को देख पाना मुश्किल नहीं है।

दिल्ली, मुम्बई के हैवान अपने गांवों, कस्बों में भी वही सब कर रहे होते हैं, जो करते वे अब पकड़े गये हैं। वे इतने दुर्लभ लोग भी नहीं; उनके जैसे बहुतेरे अपने-अपने स्तर पर स्त्री उत्पीड़न के 'सहज' खेल में लगे होंगे। गांवों, कस्बों में ये बातें प्रायः दबी रह जाती हैं। यहां तक कि महानगरों में भी ज़्यादातर मामले सामने नहीं आ पाते; विशेषकर यदि पीड़ित झुग्गियों/चालों की रिहायशी हो तो उसे चुप कराना और भी आसान होता है। पैसे का प्रलोभन, गुंडा-शक्ति का प्रभाव, लम्बी/खर्चीली/थकाऊ कानूनी प्रक्रिया, प्रायः इस काम को हैवानों के पक्ष में सम्पन्न कर जाती हैं।

आसारामों की लम्बे समय तक चलती रहने वाली वैधानिकता के पीछे भी इन्हीं कारणों का सम्मिलित हाथ होता है। उनके शिकार प्रायः उनके अपने भक्त ही हुआ करते हैं, जिनका मानसिक अनुकूलन अन्यथा गुरु की 'कृपा' से अभिभूत बने रहने का होता है। लिहाज़ा उन्हें दबा पाना और आसान हो जाता है। इसमें समान रूप से अभिभूत अन्य भक्तों का समूह भी भूमिका अदा करता है। ऊपर से उन भक्त-समूहों को चुनावी या समाजी भेड़ों के रूप में देखने वाले निहित स्वार्थों के स्वर भी इसमें शामिल हो जाते हैं। आसाराम के मामले में धीमी कानूनी कार्रवाई पर, राजनैतिक दलों, सामाजिक संगठनों एवं मीडिया समूहों की दबी-जुबानी इन्हीं प्रभावों का परिणाम है।

भारतीय समाज में स्त्री के विरुद्ध हिंसा को लेकर हलचल की कमी नहीं है। ज़रूरत है इसे सही एवं प्रभावी दिशा देने की। यह समझ बननी ही चाहिये कि लैंगिक पर-निर्भरता के रास्ते स्त्री को सुरक्षित नहीं बनाया जा सकता। स्त्री-हिंसा से मुक्ति का रास्ता लैंगिक स्वाधीनता से होकर ही जायेगा। लैंगिक स्वाधीनता के मुख्य तत्व होंगे: सम्पत्ति एवं अवसरों में लैंगिक समानता; घरों-समाजों-कार्यस्थलों पर निर्णय प्रक्रियाओं में स्त्री की बराबर की भागीदारी; सार्वभौमिक यौन-शिक्षा की अनिवार्यता; कानून-व्यवस्था में लगे तमाम राजकर्मियों, विशेषकर पुलिस एवं न्यायिक अधिकारियों का हर रूप (व्यक्तिगत/सामाजिक/ पेशेवर) से लिंग संवेदीकरण की पूर्व-शर्त; महानगरीय जीवन में गांवों/कस्बों से किसी भी स्तर पर औचक प्रवेश करनेवालों के लिए अनिवार्य 'परिचय कार्यशाला', और एक ऐसी कानूनी प्रक्रिया जिसमें पीड़ित को न्याय के दरवाज़ों (थाना, कचहरी, क्षतिपूर्ति आदि) पर न धक्के खाने पड़ें बल्कि न्याय के ये आयाम स्वयं पीड़ित के दरवाज़े पर चलकर आएं और समयबद्धता की जवाबदेही से बंधे हों।

अपराध-न्याय व्यवस्था की एजेंसियों की पेशेवर कार्यकुशलता के दम पर इसे सम्भव नहीं किया जा सकता। लैंगिक सोच के स्तर पर वहां भी आसारामी तर्क हावी हो जाते हैं। मुंबई पुलिस कमिश्नर ने एक टी वी बहस में मुंबई बलात्कार कांड की पीड़ित लड़की की यौनिक असुरक्षा के लिए उसकी लैंगिक स्वाधीनता को जिम्मेदार ठहराया। उनकी नज़र में लड़की का पुरुष मित्र के साथ होना ही उसपर आई यौनिक हिंसा का कारण है।

प्रतिप्रश्न बनता है कि यदि लड़की अपने भाई/पिता/सहकर्मी के साथ होती तो क्या शिकार होने से बच जाती? आसाराम ने दिसंबर 2012 के दिल्ली बलात्कार कांड की शिकार बनी लड़की की इसलिए भर्त्सना की थी कि उसने बलात्कारियों के हाथ में राखी बांधकर उन्हें भाई क्यों नहीं बना लिया। लैंगिक परजीविता के पक्ष में आसाराम का यह तर्क और लैंगिक स्वाधीनता को कोसता पुलिस कमिश्नर का तर्क एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

इसीलिए, सबसे बढ़कर, राज्य के लिए नीति और योजना के स्तरों पर लैंगिक समानता का सिद्धांत लागू करना अनिवार्य हो, और परिवार व समाज भी स्त्री की यौनिक पवित्रता की मारीचिका का पीछा करना छोड़कर उसके लैंगिक सशक्तिकरण पर स्वयं को केन्द्रित करें। अनुभवी प्रतिबद्ध समाजकर्मियों का, पेशेवर न्यायविदों-नौकरशाहों-राजनेताओं का नहीं, एक अधिकारप्राप्त स्वायत्त प्राधिकरण इस जटिल एवं बहुस्तरीय सामाजिक/ कानूनी/ विधायी/ प्रशासनिक प्रक्रिया की निगरानी एवं मार्गदर्शन करे। ■

आसाराम के साथ है भाजपा

एक जमाने में सेक्सी संन्यासिन के नाम से विख्यात उमा भारती पाखंडी और बलात्कारी 'संत शिरोमणि' आसाराम बापू के बचाव में आ गईं। उन्होंने कहा कि आसाराम बापू ने किसी लड़की का यौन शोषण नहीं किया है। यह उन्हें फ़ंसाने की साजिश है, क्योंकि वे कांग्रेस के ख़िलाफ़ बोलते रहे हैं।

मध्यप्रदेश भाजपा अध्यक्ष प्रभात झा ने भी इसी तरह का बयान दिया है। इससे समझा जा सकता है कि भाजपा किस तरह ढोंगी-पाखंडी और मासूम बालिकाओं, औरतों का यौन शोषण करने वाले बाबाओं का साथ देने वाली पार्टी है। इस पार्टी में एक से एक ऐसे दिग्गज भरे पड़े हैं, जिनके भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी के मामले सप्रमाण सामने आये, साथ ही कई नेताओं के सेक्स स्कैंडलों ने भी मीडिया में काफ़ी सुर्खियां बटोरी।

वैसे तो पाखंडी आसाराम ने अपना जाल विदेशों तक में फैला रखा है, पर भूलना नहीं होगा कि उसका गढ़ मोदी का गुजरात ही है। देश-विभाजन के बाद ही वह कराची से पलायन कर गुजरात आया और भारत सरकार से मिली खैरात की पूंजी से उसने तंत्र-मंत्र और झाड़-फूंक का काला करोबार शुरू किया। आज वह हज़ारों करोड़ों रुपये के काले साम्राज्य का मालिक है। ताबीज-गंडे और ज़हरीली दवाइयां बेच-बेच कर इस फ़रेबी ने इस देश की भोली-भाली ग़रीब जनता को जमकर लूटा है, साथ ही इसने अपने मायाजाल से खाये और अघाये विदेशियों को भी खूब चूना लगाया है। विदेशी औरतों के साथ इसकी अय्याशी के किस्से आम हो गए हैं।

इस आसाराम पर अब उसके आश्रम में रहने वाली एक बालिका ने झाड़-फूंक के बहाने दुष्कर्म करने का आरोप लगाया। एफआईआर दर्ज करने के बाद मेडिकल जांच में दुष्कर्म का आरोप सच साबित हुआ, फ़िर भी सरकार ने उसे तुरंत गिरफ़्तार करना जरूरी नहीं समझा। सबूत ढूंढने की कवायद चलती रही। ऐसे मामले में आरोपी को तो तुरंत गिरफ़्तार किया जाता है, सबूत अदालत में पेश किये जाते हैं, पर ये आरोपी कोई मामूली तो नहीं।

ये है संत आसाराम बापू जो खुलेआम मंच पर एक विदेशी महिला और उसके नवजात बेटे को बुला कर उससे कहता है कि मै तेरा क्या लगा, पूछ उससे, अपनी मां से, मैं हूं तेरा बाप, भारत सबका बाप है, मैं हॉट हूं। इस आसाराम पर पहले भी कई तरह के आरोप लग चुके हैं। कुछ साल पहले इसके आश्रम में दो लड़के

आसाराम भेड़िया : लूटता ग़रीबों की दुनिया

मृत पाये गए थे। इस पर लड़कों के यौन शोषण का भी आरोप लग चुका है। लेकिन इसका बाल बांका तक नहीं हुआ। आम आदमी पर इस तरह के आरोप लगे तो पुलिस डंडे मारकर अंदर कर देती है, पर ये आसाराम है, करोड़ों-अरबों का मालिक।

कांग्रेस से लेकर भाजपा तक में कई बड़े लीडरान इसके कदमों में सिर झुकाते हैं। यह चरस और अफीम के नशे में धुत्त हो मंच पर आकर नाचता है, अंधविश्वास में डूबे हज़ारों-हज़ार लोग इसके आगे सिर झुकाते हैं।

विलासिता में डूबा यह अघोरी मासूम लड़कियों और औरतों को अपना शिकार बनाता है, पर पाप का घड़ा जब भरेगा तो फूटेगा ही। लेकिन यहां तो घड़ा फूट जाने पर भी बचाने वाले न जाने कितने हैं। भाजपाई भी, कांग्रेसी भी, और भी कई दलों के लुटेरे लीडर। चोर-चोर मौसेरे भाई।

नेता, अफ़सर, पूंजीपति और ये बाबा लोग मिलजुलकर इस देश को लूट रहे हैं। जनता असावधान है। वह इनके प्रपंचों का शिकार हो रही है। भूखी और दुखी जनता। नहीं समझ पा रही, जनतंत्र एक तमाशा बन गया है।

ये आसाराम अकेला नहीं। न जाने कितने हैं। जनता की गाढ़ी कमाई को लूटकर भोली-भाली लड़कियों और औरतों की अस्मत पर डाका डालने वाले इन अधिकारियों की 'आजाद' हिंदुस्तान में कोई कमी नहीं है। लीडरान इन्हें पाल-पोस रहे हैं और आगे बढ़ा रहे हैं। इसलिए, अगर कई धक्के खाने के बाद फ़िर से भाजपा में वापस आई उमा भारती ने आसाराम को निर्दोष बताया तो यह कोई हैरत की बात नहीं। सैकड़ों चूहे खाने के बाद वो भी हज कर आई हैं। आज इस देश में भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे नेताओं के साथ-साथ हराम की खा-खाकर उय्याशी करने वाले बाबाओं और संतों की लाइन लग गई है। कोई झाड़-फूंककर, गंडे-ताबीज बेच करोडों-अरबों की दौलत के ढेर पर चल रहा है तो कोई योग का व्यापार कर सबसे ज़्यादा मुनाफ़े वाले धंधे, राजनीति में आने का सपना देख रहा है।

ऐसे संतों बाबाओं और योग गुरूओं की पोल-पट्टी हर रोज खुल रही है- भारत से लेकर अमेरिका तक। कुछ बाबा तो खुलेआम अंतरराष्ट्रीय सेक्स रैकेट तक चलाते पकड़े गए हैं । कुछ बाबा ऐसे हैं, जो अपने आपको राम और कृष्ण का अवतार बताते हैं और मूढ़ भक्तिनों को फांसकर उनके साथ मौज उड़ाते हैं। ये हैरत-अंगेज पर शर्मनाक बात होगी कि इतना होने पर भी आसाराम बापू की गंडे-तबीज और झाड़-फूंक की दुकान बदस्तूर चलती रहेगी।

-मनोज कुमार झा